अथर्ववेद में विश्वबंधुत्व

डॉ. कमलेश रानी
सह आचार्य, संस्कृत विभाग
कमला नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
Email: kamalbattra@gmail.com

जिस प्रकार समग्र वैदिक वाङ्मय में सर्वत्र विश्वबन्धुत्व का वर्णन प्राप्त होता है, उसी प्रकार अथर्ववेद में भी विश्वबंधुत्व के वर्णन सर्वत्र दर्शनीय हैं। विश्वबन्धुत्व की भावना के लिए जैसे यजुर्वेद के 32वें अध्याय के अष्टम मन्त्र में कहा गया है- **वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सत्। यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्॥** अर्थात् ज्ञानी मनुष्य उस ब्रह्म को गुप्त स्थान में अथवा बुद्धि में अवस्थित तथा त्रिकालबाधित-नित्य है, ऐसा देखता है। वैसे ही अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड के प्रथम मन्त्र में कहा गया है- **वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम्॥** अर्थात् भक्त ही उस परमश्रेष्ठ परमात्मा को देखता है, जो हृदय की गुफा में है और जिसमें सम्पूर्ण जगत् एक रूप हो जाता है। कहने का भाव यह है कि प्रत्येक भक्त अथवा ज्ञानी मनुष्य समग्र विश्व के लोगों में आत्मभाव को देखता है। इस प्रकार न कोई धर्म, न कोई पन्थ, न कोई सम्प्रदाय और न तो कोई देश उस परम तत्त्व से अलग है अपितु सब एक है। सब एक सूत्र में माला की तरह पिरोंएँ गये हैं। अतः इससे बड़ा और विश्वबन्धुत्व क्या हो सकता है? जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है- **एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति॥**[1] अर्थात् सत् एक ही है परन्तु विद्वान् लोग उसको विविध रूपों में कहते हैं किंवा बतलाते हैं। अथर्ववेद के उच्छिष्ट ब्रह्म सूक्त में कहा गया है-

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः।

उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम्॥

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्।

आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वातः आहितः॥[2]

अर्थात् उच्छिष्ट अर्थात् अवशिष्ट आत्मा में नाम और रूप तथा उच्छिष्ट में लोक-लोकान्तर स्थित हैं। उच्छिष्ट में इन्द्र और अग्नि तथा उसके अन्दर सम्पूर्ण विश्व समाया हुआ है। उच्छिष्ट में द्युलोक और भूलोक तथा समस्त भूत मात्र अवस्थित हैं। जल, समुद्र, चन्द्रमा, वायु ये सब उसी में अवस्थित हैं। इस प्रकार इन मन्त्रों में भौतिक तथा आध्यात्मिक स्तर के विश्वबन्धुत्व की भावभूमि को ऋषि अथर्वा ने लोक कल्याण के निमित्त प्रस्तुत किया है। इसी सूक्त के 14वें मन्त्र में ऋषि का कथन है-

नव भूमिः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः।

आसूर्यो भाव्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयिं॥[3]

अर्थात् नवभूमि (भरत, किम्पुरुष, भद्र, हरि, हिरण्य, केतुमाल, इलावर्त, कुरु और रम्युक), सब समुद्र और द्युलोक भी उच्छिष्ट में आश्रित है। सूर्य उच्छिष्ट में ही प्रकाशता है, जिससे अहोरात्र होते हैं। यह सब ज्ञान मुझमें रहे। इस प्रकार इस मन्त्र में समग्र भूमण्डल को एक ही बतलाया गया है। अतः इससे बढ़कर विश्वबंधुत्व और क्या हो सकता है? अथर्ववेद के चतुर्थकाण्ड के ब्रह्मविद्या सूक्त में विश्वबन्धुत्व की अनुपम झलक देखने को मिलती है, जिसमें कहा गया है-

---

[1] ऋग्वेद- 1.164.46

[2] अथर्ववेद-काण्ड-11, सूक्त-7, मन्त्र-1-2

[3] अथर्ववेद-काण्ड-11, सूक्त-7, मन्त्र-14

Volume 2, Issue 2, 2023, p. 21-25, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

स हि दिव: स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत् ।

महान्मही अस्कभायद्वि जातो द्यां सद्भ्र पार्थिवं च रजः ॥

स बुध्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट् ।

अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्रा: ।[4]

अर्थात् वही एक देव (पर ब्रह्म) द्युलोक और पृथ्वीलोक आदि को सत्य नियमों से अपने-अपने स्थान में स्थिर करने वाला है। उसी ने इस द्युलोक और पृथिवीलोक को घर जैसा बनाया है। उसी प्रकट हुए महान् देव ने द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और इस हमारे घर के समान भूलोक को विस्तृत और महान् बनाकर अपने-अपने स्थान में सुदृढ़ किया है। इस जगत् का एक सम्राट बृहस्पति देव है, वह आदिकाल से चारो ओर पूर्ण रीति से फैला हुआ है। उसकी ज्योति से जो पवित्र दिन का प्रकाश होता है, उससे प्रकाशित होने वाले ज्ञानी विशेष प्रकार से जीवन व्यतीत करें। इन मन्त्रों में आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक जगतत्रय की दृष्टि से समग्र भूमण्डल को एक बतलाया गया है। समग्र भूमण्डल के मनुष्यों का देवता (भगवान्) भी एक है। प्रकाशित होने वाले भगवान् सूर्य भी एक हैं। पृथ्वी और भूमण्डल भी एक सूत्र में ही बंधे हुए हैं। अतः इन मन्त्रों में मन्त्रद्रष्टा ऋषि द्वारा कथित वैश्विकबन्धुत्व अत्यन्त विचारणीय है। यह विषय वर्तमान समय में अत्यन्त विचारणीय है। इसकी प्रासंगिकता हैं क्योंकि आज समग्र देश पारस्परिक कलह और अन्तर्द्वेष से झुलस रहे हैं। ऐसे में इस प्रकार के वैदिक ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है। इसलिए प्रत्येक सुधीजन को इस प्रकार के ज्ञान पर विचार-विमर्श करना और जन-जन तक पहुंचाना चाहिए।

अथर्ववेद के चतुर्थकाण्ड में ही द्वितीय सूक्त के अन्तर्गत आया है कि हम किस देवता की उपासना करें? अर्थात् **कस्मै देवाय हविषा विधेम ?** इसी सूक्त के अधोलिखित मन्त्र में कहा गया है -

यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहुः ।

ईमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम् ॥

आपो अग्ने विश्वमावन्गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञा: ।

यासु देवीष्वधि देव आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।[5]

अर्थात् जिसके बल से हिमयुक्त ऊँचे पर्वत खडे हुए हैं, प्राणियों के रहने के लिए समुद्र में भूमि बनी है और जब दिशा-उपदिशाएँ, जिसकी बाहुओं के समान फ़ैली हैं। सत्य नियम से चलने वाली, जीवन देने वाली, गर्भधारण करके प्रजा उत्पन्न करने वाली प्रकृतिरूप जल की धाराएं जब विश्वरचना के लिए आगे बढ़ी तब उनका संचालन करने वाला जो एक देव था, उसी देवता की हम सब पूजा करें। यह मन्त्र यजुर्वेद में भी आया हुआ है। इस मन्त्र में समग्र विश्व का रचयिता एक मात्र परमात्मा को बतलाया गया है। इस चराचर जगत् में व्याप्त समस्त तत्त्वों, द्रव्यों तथा जीव-जगत् का रचयिता परमात्मा है। सब प्राणी पृथ्वी के किसी भी भाग के हों सब परमेश्वर की सन्तानें हैं, यह हमें जानना चाहिए। इसी अनुरूप हमें मनसा, वाचा, कर्मणा व्यवहार करना चाहिए। इन मन्त्रों के विश्वबंधुत्व का यही अभिप्राय है।

अथर्ववेद के प्रथमकाण्ड के प्रथम सूक्त के अंतर्गत संगठन महायज्ञ का वर्णन किया गया है। इस संगठन महायज्ञ सूक्त में बहुत ही उत्कृष्ट विश्वबन्धुत्व भाव का निर्देश किया गया है। राष्ट्र अथवा राष्ट्रेतर सन्दर्भ में इस प्रकार की बात पर अवश्य विचार करना चाहिए। सूक्त के अधोलिखित मन्त्रों में ऋषि अथर्वा का कथन है –

सं सं स्रवन्तु सिन्धव: सं वाता: सं पतत्रिण: ।

[4] अथर्ववेद-काण्ड-4, सूक्त-1, मन्त्र-4-5

[5] अथर्ववेद-काण्ड-4, सूक्त-2, मन्त्र-5-6

©Indira Gandhi National Open University

इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि।

इहैव हवमा यात म इह संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः।

इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः॥

ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदगक्षिताः॥

तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि॥

ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च।

तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि।[6]

अर्थात् जिस प्रकार नदियाँ मिलकर बहती हैं, वायु मिलकर बहती हैं, पक्षी भी मिलकर उड़ते हैं, उसी प्रकार दिव्य जन भी इस मेरे यज्ञ में मिलजुल कर सम्मिलित हो, क्योंकि मैं संगठन को बढाने वाले अर्पण से ही यह संगठन का महायज्ञ कर रहा हूँ। सीधे मेरे इस संगठन महायज्ञ में आ जाओ और हे संगठन के साधक वक्ता जन ! तुम अपने उत्तम संगठन बढ़ाने वाले वक्तृत्वों से इस संगठन महायज्ञ को फैला दो । जो हम सब में पशुभाव हो, वह यहाँ इस यज्ञ में आवे और हम सब में धन्यता का भाव चिरकाल तक निवास करे। जो नदियों के अक्षय स्रोत इस संगठन महायज्ञ में बह रहे हैं, उन सब स्रोतों से हम अपना धन संगठन द्वारा बढ़ाते हैं। क्या घी, क्या दूध और क्या जल की जो धाराएँ हमारे पास बह रही हैं, उन सब धाराओं से हम अपना धन इस संगठन द्वारा बढ़ाते हैं ? अर्थात् नहीं। इसलिए इन मन्त्रों के माध्यम से मनुष्य मात्र को यह सांकेतिक उपदेश है कि वह समग्र क्षेत्रों में अपनी उन्नति का माध्यम संगठन को बनावें । परन्तु आज के समय में संगठन विच्छिन्न होते जा रहे हैं । घर-परिवार, समाज, जनपद, मण्डल, राज्य, राष्ट्र सब में विघटन होता जा रहा है । स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। इस मन्त्र में मन्त्रदृष्टा ऋषि का यह उपदेश नितान्त विचारणीय है कि वह ज्ञानयज्ञ किंवा ज्ञान की विचारधारा के द्वारा समाज एवं राष्ट्र को सुसंगठित करे । इस संगठन के निर्माण में ऋषि ने नदियों, वायु तथा पक्षियों के समूह की शक्ति का उदाहरण दिया है। इसलिए हम मनुष्यों का परम कर्तव्य है कि अपने बहुमुखी विकास के लिए हम संगठन में आवें । इसी में हम सब की भलाई है । अथर्ववेद के सप्तम कांड के मातृभूमि सूक्त में विश्वबन्धुत्व की भावना का निदर्शन होता है, जिसमें कहा गया है-

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।

विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥[7]

अर्थात् मातृभूमि ही हमारा (समग्र विश्व का) स्वर्ग है, वही अन्तरिक्ष है, वही माता, पिता और पुत्रपौत्र है, वही हमारा सब प्रकार का देवता (विश्वदेवता) है और वही हमारी जनता है, बना हुआ और बनने वाला सबकुछ पदार्थ हमारे लिए मातृभूमि ही है। हमारी मातृभूमि पर ही पाँच प्रकार के लोग हैं- ज्ञानी, शूर, व्यापारी, कारीगर और अशिक्षित; ये पाँच प्रकार के लोग प्रत्येक राष्ट्र में रहते हैं । मातृभूमि इन्हीं से पूर्ण होती है, इसलिए कहा जाता है कि मातृभूमि में पाँच प्रकार के लोग हैं और पाँच प्रकार के लोग ही मातृभूमि है। अर्थात् मातृभूमि का अर्थ इन पांच प्रकार के लोगों के साथ अपनी भूमि है। विश्वबन्धुत्व का एक और अनुपम उदाहरण अथर्ववेद के सप्तमकाण्ड के मेघों में सरस्वतीसूक्त में मिलता है, जिसमें ऋषि शौनक का कथन है-

यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वो दैवः केतुर्विश्वमाभूषतीदम्।

[6] अथर्ववेद-काण्ड-1, सूक्त-15, मन्त्र-1-4

[7] अथर्ववेद-काण्ड-7, सूक्त-1, मन्त्र-1

©Indira Gandhi National Open University

मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य ॥[8]

अर्थात् हे सरस्वती! जो तेरा विस्तृत और गर्जना करने वाला, स्वयं वृष्टि रूप से प्रवाहित होने वाला, जिसमें बिजली की चमक होती है और जो इस विश्व का भूषण होता है, वह मेघ अपनी बिजली से हमारा नाश न करे, परन्तु ऐसा भी न हो कि आकाश में बादल न आयें और सूर्य के ताप से हमारी खेती जल जावे। अर्थात् आकाश में बादल आयें, मेघ बरसे और खेती उत्तम हो, परन्तु मेघों की विद्युत से किसी का नाश न होवे। इस प्रकार इस मन्त्र के अन्तर्गत वैश्विकस्तर पर विश्वबन्धुत्व की भावना का निदर्शन होता है। यहाँ पर समग्र विश्व के कृषकों की कृषि की मंगल कामना की गई है। सूर्य के तपन से बादल बनते हैं और फिर वर्षा होती है। जिससे उत्तम कृषि होती है। इस मन्त्र के अन्दर ऋषि के द्वारा सरस्वती से यह प्रार्थना की गई है कि अतिवृष्टि भी न हो और अनावृष्टि भी न होवे। बादल समयानुसार और कृषि की आवश्यकतानुसार बरसें जिससे कि समग्र विश्व के कृषकों का नुकसान न होने पावे।

अथर्ववेद के सप्तम काण्ड के सूर्य-चन्द्र सूक्त में घर के दो (उत्तम) बालक में ऋषि अथर्वा का कथन है-

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्।

विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नमः ॥[9]

अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् एक बड़ा घर है, इस घर में हम सब रहते हैं। इस घर में दो आदर्श बालक हैं, इन बालकों का नाम 'सूर्य और चन्द्र' है। हमारे घर में बालक कैसे हो और माता पिता को प्रयत्न करके अपने घर के बालकों को किस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए और बालक कैसे बनने चाहिये, इस विषय का उपदेश इस मन्त्र में दिया गया है। अत: विश्व के प्रत्येक गृहस्थ को अपनी सन्तानों को सूर्य और चन्द्र सदृश उचित शिक्षा-दीक्षा और संस्कार के द्वारा बनाना चाहिए। जिस प्रकार भगवान् सूर्य देश-देशान्तर में भ्रमण करते हुए अपने प्रकाश से इस समस्त जगत् को प्रकाशित करते हैं तथा अन्धकार में डूबे हुए जगत् को आलोकित करते हैं, उसी प्रकार संसार के समस्त गृहस्थ अपने बालक को उत्तम ज्ञानी बनावें जिससे वह अज्ञान के अन्धकार में डूबे हुए लोगों को ज्ञान के प्रकाश में लावें और लोककल्याण सम्भव हो सके। डॉ. सातवलेकर ने अपने अथर्ववेद के भाष्य में लिखा है कि सूर्य और चन्द्र पर रूपक इस मन्त्र में है। पाठक इसका उचित विचार करें और अपने बालकों की शिक्षा आदि के विषय में योग्य उपदेश प्राप्त करें किंवा देवें। अतः एक सूर्य जैसा तेजस्वी और प्रतापवान् पुत्र होवे जो जगत् को प्रकाश और यश देवे तथा एक चन्द्र जैसा पुत्र होवे जो कि नवजीवन (दीर्घायुष्य) प्राप्त करने की विद्या का सम्पादन करके नवीन जैसा होवे और दीर्घायु प्राप्त करे और लोगों को भी दीर्घायु प्राप्त करने योग्य बनावे। इस प्रकार इस मन्त्र में वैश्विक विश्वबन्धुत्व की कामना का अनुपम निदर्शन होता है।

इस संसार का प्रत्येक जीवात्मा विश्वबन्धुत्व से संयुक्त है। कोई भी जीव आध्यात्मिक धरातल पर अलग नहीं है। सबसे बड़ा यही विश्वबन्धुत्व है। अथर्ववेद के अधोलिखित मन्त्र में यह भावना दृष्टिगोचर होती है, जिसमें कहा गया है –

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।

स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥

द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम्।

उत्तानयोश्चम्बोर्योनिरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥[10]

[8] अथर्ववेद-काण्ड-7, सूक्त-12, मन्त्र-1
[9] अथर्ववेद-काण्ड-7, सूक्त-81, मन्त्र-1
[10] अथर्ववेद-काण्ड-9, सूक्त-10, मन्त्र-11-12

©Indira Gandhi National Open University

अर्थात् यह जीवात्मा इन्द्रियों का रक्षक है और स्वयं पतनशील नहीं है। वह परमात्मा इसके (प्रत्येक जीवात्मा) के साथ है, सर्वत्र व्याप्त है और सब पदार्थों में विराजमान है । वह परमात्मा द्यु अर्थात् सूर्य के समान प्रकाशमान है, वही हम सबका पिता, जनक, बन्धु और केन्द्र है। यह पृथ्वी अर्थात् प्रकृति हमारी माता है । यह पिता इस दुहिता रूपी प्रकृति में गर्भ का आधान करता है जिससे सब सृष्टि उत्पन्न होती है। इन दोनों प्रकृति-पुरुष में सबका उत्पत्ति स्थान है। इस प्रकार इस मन्त्र में आध्यात्मिक स्तर के विश्वबन्धुत्व की भावना का निदर्शन है। समग्र देश-देशान्तर में उत्पन्न हुए जीव एक ही परमात्मा की सन्तानें हैं । इस पर विचार-विमर्श करके सभी को पारस्परिक विश्वबंधुत्व की भावना को जागृत करना चाहिए और सत्यतः व्यवहृत करना चाहिए । इसी से समग्र लोक का कल्याण-मङ्गल सम्भव है अन्यथा वर्तमान में देश-देशान्तरों में जिस प्रकार का पारस्पारिक कलह चल रहा है, वह समग्र लोक के लिए अमङ्गलकारी है । प्रस्तुत शोधपत्र के अन्तर्गत संक्षिप्त रूप से अथवर्वेद के कतिपय मन्त्रों को उदाहृत किया गया है। वस्तुतः समग्र अथर्ववेद के मन्त्रों में इस प्रकार की भावना सर्वत्र भरी हुई है । अथवर्वेद में भी कही गई उक्ति - 'संगच्छध्वं संवदध्वं' इस बात का परम प्रमाण है।

©Indira Gandhi National Open University